|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 14: गुणत्रयविभागयोग

1/3 (श्लोक 1-9), रविवार, 26 अक्टूबर 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/R7wOaYNIvt8

त्रिगुणात्मक सार्वभौमिकता

आज के सत्र का शुभारम्भ प्रार्थना, देशभक्ति गीत, श्रीहनुमान चालीसा पाठ और दीप प्रज्वलन से हुआ। इसके उपरान्त, सत्र में **श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय, 'गुणत्रयविभागयोग'** के पूर्वार्द्ध का विवेचन किया गया।

सर्वप्रथम, गुरुदेव के श्रीचरणों में नमन किया गया, माँ सरस्वती की वन्दना हुई, ज्ञानेश्वर महाराज का कृपाशीर्वाद लिया गया और सद्गुरु स्वामी गोविन्द देव गिरि जी महाराज के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन किया गया। तत्पश्चात्, सभी श्रीमद्भगवद्गीता प्रेमी साधकों का विनम्र अभिवादन किया गया। साथ ही, यह कामना की गई कि परम पूज्य सद्गुरु स्वामी गोविन्द देव गिरि जी महाराज का सतत कृपाशीर्वाद बना रहे, **जिनके अनुग्रह से** प्रवाहित हो रहा यह ज्ञान का पावन प्रवाह हमारे अन्तरङ्ग और मन:पटल को प्रकाशित करते हुए इस देश, जगत् और समग्र वसुधा को भी प्रकाशित करे।

अभी चल रहा प्रकाश का पर्व इस तथ्य को रेखाङ्कित करता है कि जब ज्ञान की दीप्ति होती है, तब अन्तरङ्ग प्रकाशमय हो जाता है तथा अज्ञान का आवरण मिट जाता है। इसी सन्दर्भ में, श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय में श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं कि वे अपने भक्तों पर अनुकम्पा करने हेतु उनके अन्तर्मन में स्थित होकर ज्ञान के प्रकाशमान दीपक द्वारा अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को नष्ट कर देते हैं।

श्रीभगवान् दसवें अध्याय में कहते हैं-

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।10.11।।

निवृत्तिनाथ का सामर्थ्य

निवृत्तिनाथ किस प्रकार के गुरु हैं?
ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं

"म्हणौनि साधकां तूं माउली,

पिके सारस्वत तुझिया पाउलीं,

या कारणें मी साउली, न संडीं तुझी ॥ ८ ॥"

"हे गुरुदेव! आप ऐसे हैं कि आपके जीवन में प्रवेश होने के साथ ही,
आपके चरण कमलों का हृदय में प्रवेश होने के साथ ही, अन्य दो चरण भी आ जाते हैं।" वे दो चरण माँ सरस्वती के हैं। माँ सरस्वती का अपने जीवन में प्रवेश होता है और यह सरस्वती ज्ञान की आभा, ज्ञान की प्रभा जगाती है। इसीलिए मैं आप की यह छत्रछाया कभी छोड़ना ही नहीं चाहता। पुनः आपका अनुनय बारम्बार करता हूँ।

"आतां कृपाभांडवल सोडीं, भरीं मति माझी पोतडी,
करीं ज्ञानपद्य जोडी, थोरा मातें ॥ १७ ॥"

अब कृपा की वर्षा कीजिए और मेरी मति को ज्ञान से भर दीजिए।
ताकि मेरी वाणी से वो काव्य ज्ञानधारा बहे।

"पद्य ज्ञान जोडी" का आशय है कि पद्य अर्थात् काव्य के साथ ज्ञान भी प्रस्फुटित हो जाए। यह आग्रह अपने गुरुदेव से करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज इस अध्याय की ओर प्रस्थान करते हैं।

14.1

श्रीभगवानुवाच
परं(म्) भूयः(फ्) प्रवक्ष्यामि, ज्ञानानां(ञ्) ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः(स्) सर्वे, परां(म्) सिद्धिमितो गताः॥14.1॥

श्रीभगवान बोले – सम्पूर्ण ज्ञानों में उत्तम (और) श्रेष्ठ ज्ञान को मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब के सब मुनि लोग इस संसार से (मुक्त होकर) परमसिद्धि को प्राप्त हो गये हैं।

विवेचन- श्रीमद्भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय में प्रकृति के तीन गुणों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'गुण' शब्द के दो मुख्य अर्थ हैं। पहला अर्थ है 'गुणधर्म' अर्थात् किसी वस्तु या तत्त्व का स्वाभाविक धर्म (क्वालिटी), जैसे जल का गुणधर्म शीतलता, सूर्य का प्रकाश देना और अग्नि का दाहकता है। संस्कृत में इसका दूसरा अर्थ 'रस्सी' भी है, जो बाँधने का कार्य करती है। इस अध्याय में सत्त्व, रज और तम- इन तीन गुणों को तीन रस्सियों के समान बताया गया है, जो मनुष्य को बाँधती हैं। जब तक हमें अपने बन्धनों का ज्ञान नहीं होता, तब तक हम उनसे मुक्त होने का प्रयास भी नहीं करते।

यह अध्याय हमें समझाता है कि ये बन्धन बाहरी नहीं, अपितु मानसिक और आन्तरिक हैं। इन्हीं बन्धनों के कारण हम कई बार कुछ अच्छा करना चाहते हुए भी नहीं कर पाते। यह अध्याय उस शक्ति को समझने में सहायता करता है जो हमें हमारे शुभ सङ्कल्पों से परावृत्त करती है। जब हम इन बन्धनों के स्वरूप को समझते हैं, तो हमारा दृष्टिकोण बदलता है और दृष्टिकोण बदलने के साथ ही ये बन्धन शिथिल होने लगते हैं। इसी कारण श्रीभगवान् स्वयं इस ज्ञान को बार-बार तब तक बताते हैं, जब तक यह साधक के अन्तःकरण में स्थिर न हो जाए। श्रीमद्भगवद्गीता का बार-बार अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि इसका ज्ञानरूपी भण्डार तभी खुलता है, जब हम अपना अन्तःकरण श्रीकृष्ण को समर्पित कर देते हैं। श्रीभगवान् ही आन्तरिक रूप से बन्धन खोलते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं-

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।।14.1।।

अर्थात् मैं तुम्हें सभी ज्ञानों में उत्तम, उस परम ज्ञान को **"भूयः"** (फिर से) कहूँगा। यद्यपि नवें अध्याय में ज्ञान और विज्ञान की चर्चा हो

चुकी है, तथापि श्रीभगवान् जानते हैं कि युद्धभूमि में खड़े अर्जुन के लिए इस ज्ञान को एक बार में आत्मसात् करना कठिन है। अतः वे कहते हैं कि जब तक यह ज्ञान तुम्हारे अन्तरङ्ग में स्थापित नहीं हो जाता, तब तक मैं इसे **"प्रवक्ष्यामि"**- अर्थात् भली-भाँति और अच्छी तरह से बताता रहूँगा। गुरु का यही परम लक्षण है कि वह शिष्य का अज्ञान दूर करने के लिए कभी ऊबता नहीं है। यही गुरु का सर्वोपरि लक्षण होता है। गुरुदेव अपने शिष्य का अज्ञान नष्ट करना चाहते हैं।

यह ज्ञानरूपी धारा अर्जुन के लिए तब प्रवाहित हुई, जब उन्होंने शिष्य भाव से श्रीभगवान् के समक्ष आत्मसमर्पण किया। दूसरे अध्याय के सातवें श्लोक में अर्जुन कहते हैं-

"कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चतं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।2.7।।

अर्थात्, कायरता रूपी दोष से मेरा स्वभाव नष्ट हो गया है और धर्म के विषय में मेरा चित्त मोहित हो रहा है, अतः मैं आपसे पूछता हूँ कि जो मेरे लिए निश्चित रूप से कल्याणकारी हो, वह मुझे बताइए। मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, आप मुझे उपदेश दें। शिष्य की भूमिका में दो बातें निहित हैं- **"शासनात् शिष्यः"** अर्थात् जो गुरु के शासन और आज्ञा का पालन करे तथा **"संशनात् शिष्यः"** अर्थात् जो अपने संशयों का निवारण करने हेतु ज्ञान प्राप्त करना चाहे। जब अर्जुन ने यह भूमिका स्वीकार की, तभी श्रीभगवान् ने उन्हें यह गुह्य ज्ञान दिया।

इस ज्ञान को प्राप्त करने का फल क्या है? श्रीभगवान् कहते हैं- **"यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः"**- अर्थात् जिसे जानकर सभी मुनि परम सिद्धि को प्राप्त हो गए। यहाँ **'मुनि'** शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है- मननशील व्यक्ति। जो संसार के सभी कार्यों को करते हुए भी अपने अन्तःकरण को इस ज्ञान से जोड़े रखता है और इसे जीवन में उतारने का निरन्तर चिन्तन करता है, वही इस परम ज्ञान तक पहुँच सकता है। केवल प्रवचन करने वाला, कण्ठस्थ करने वाला या उच्चारण करने वाला नहीं, अपितु जो मननशील है, वही परम सिद्धि प्राप्त करता है।

ज्ञान और विज्ञान का भेद

सातवें अध्याय में श्रीभगवान् ने ज्ञान और विज्ञान का भेद स्पष्ट किया है। **विज्ञान** का अर्थ है प्रपञ्च का ज्ञान, अर्थात् सृष्टि और उपजीविका का ज्ञान। इसमें अभियान्त्रिकी (इंजीनियरिंग), चिकित्सा, वाणिज्य (कॉमर्स) जैसे सभी सांसारिक ज्ञान सम्मिलित हैं, जो जीवनयापन के लिए आवश्यक हैं। वहीं, **ज्ञान** का अर्थ है आत्मज्ञान- स्वयं के स्वरूप का ज्ञान।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि केवल प्रपञ्च-ज्ञान में ही सत्य-बुद्धि रखना और आत्मज्ञान को भूल जाना श्रेयस्कर नहीं है। वे कहते हैं-

एथ विज्ञानें काय करावें।

ऐसें घेसी जरी मनोभावें।

तरी पैं आधीं जाणावें। तेंचि लागे ॥ ३ ॥

अर्थात्, यदि तुम्हारे मन में यह विचार आए कि विज्ञान (सांसारिक ज्ञान) का क्या करना है, यह तो केवल प्रपञ्च का ज्ञान है, तो भी पहले उसे ही प्राप्त करना चाहिए।

उपजीविका का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए, किन्तु जीवन-विद्या, जो हमें हमारे वास्तविक स्वरूप की पहचान कराती है, उसे भी जीवन में किसी-न-किसी पड़ाव पर अवश्य सीखना चाहिए। ज्ञानेश्वर महाराज सावधान करते हैं-

अर्जुना तया नांव ज्ञान। येर प्रपंचु हें विज्ञान।

तेथ सत्यबुद्धि तें अज्ञान। हेंही जाण ॥ ६ ॥

अर्थात्, अर्जुन! आत्मज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है और यह प्रपञ्च विज्ञान है। किन्तु केवल प्रापञ्चिक ज्ञान में ही सत्य-बुद्धि रखना, यह घोर

अज्ञान है।

एक दृष्टान्त है कि ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ने बाल्यकाल में अपने बड़े भाई से कहा कि मुझे यह दाल-रोटी की विद्या नहीं, अपितु जीवन की विद्या सीखनी है। इसके पश्चात् वे रानी रासमणि के काली मन्दिर में पुजारी बने और वहाँ सगुण-साकार की उपासना करते हुए उस परम निर्गुण ज्ञान तक पहुँच गए।

यह ज्ञान अपने मूल स्वरूप को भूल जाने रूपी अज्ञान को मिटाता है। हमारा मूल स्वरूप चैतन्य है, जो अज्ञान के आवरण से ढक गया है। ज्ञानेश्वर महाराज के शब्दों में, यही अज्ञान है-

"आपला आपणपेयां, विसरु जो धनंजया,

तेंचि रूप यया, अज्ञानासी ॥ ७१ ॥"

एक बार यह ज्ञान प्राप्त हो जाए, तो यह बोध होता है कि हम उसी परमात्मा के अंश हैं, जैसा कि पन्द्रहवें अध्याय में कहा गया है-

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।।15.7।।"

14.2

इदं(ञ्) ज्ञानमुपाश्रित्य, मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते, प्रलये न व्यथन्ति च॥14.2॥

इस ज्ञान का आश्रय लेकर (जो मनुष्य) मेरी सधर्मता को प्राप्त हो गये हैं, (वे) महासर्ग में भी पैदा नहीं होते और महाप्रलय में भी व्यथित नहीं होते।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- **"इदं ज्ञानम् उपाश्रित्य"**- अर्थात् जो इस ज्ञान का आश्रय लेकर जीवन जीते हैं और इससे सदा जुड़े रहते हैं, वे **"मम साधर्म्यम् आगताः"**- अर्थात् मेरे साधर्म्य को प्राप्त हो जाते हैं। यह ज्ञान स्वयं का ज्ञान, आत्मज्ञान, चैतन्य का ज्ञान है। यह सृष्टि जड़ और चैतन्य के संयोग से बनी है। केवल ज्ञान या चैतन्य (शिव) से कार्य नहीं होता, जब उस पर वृत्ति (शक्ति) उठती है, तभी कार्य होता है। शिव अप्रकट शक्ति (पोटेंशियल) हैं और शक्ति क्रियाशील ऊर्जा (करंट) है। इसी से सृष्टि का खेल चलता है। जो इस मूल ज्ञान के आश्रय में रहता है, वह परमात्मा के साधर्म्य को प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा का साधर्म्य क्या है?

यह वर्णाश्रम धर्म या कोई उपासना पद्धति (रिलीजन) नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता किसी भी स्थान पर 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं करती, अपितु अट्ठारहवें अध्याय में कहती है-

"सिद्धिं विन्दति मानवाः"- अर्थात् सभी मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होगी। यह गीता की उदारता और व्यापकता है, जो हमें सङ्कुचितता से व्यापकता की ओर ले जाती है और यही व्यापकता परमात्मा का स्वरूप है। परमात्मा का साधर्म्य उनके किसी विशेष रूप, जैसे- मुरली मनोहर, गोवर्धन गिरिधारी, धनुर्धारी राम या नीलकण्ठ शिव से नहीं, अपितु उनके मूल स्वरूप से है।

श्रीभगवान् का साधर्म्य है- **सत्, चित् और आनन्द**।

1. **सत्**- सत्य, अनन्त जीवन।
2. **चित्**- चिन्मय, अखण्ड ज्ञान।
3. **आनन्द**- स्वाधीन सुख। सुख का विरुद्धार्थी शब्द दुःख है, मान का अपमान है, किन्तु आनन्द का कोई विरुद्धार्थी शब्द नहीं है।

जो इस ज्ञान से जुड़कर रहता है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। यह जुड़ाव क्षणिक नहीं, अपितु निरन्तर होना चाहिए। जैसे गङ्गा एक बार सागर से मिल जाती है, तो फिर वापस नहीं लौटती, वह उसी में विलीन रहती है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

"कां सकळ जळसंपत्ती, घेऊनि समुद्रातें गिंवसिती,

गंगा जैसी अनन्यगती, मिळालीचि मिळे ॥ ६८७ ॥"

अर्थात्, गङ्गा अपनी सम्पूर्ण जल-सम्पत्ति लेकर समुद्र से मिलती है और अनन्य गति से उसी में मिली रहती है।

उसी प्रकार जो इस ज्ञान के आश्रय में रहता है, वह सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। वह संसार के दुःखों से व्यथित नहीं होता, शोकाकुल या अवसादग्रस्त (डिप्रेस्ड) नहीं होता। ऐसे पुरुष को **"सर्गेऽपि नोपजायन्ते"**- अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में अपने कर्मों का फल भोगने के लिए पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता और **"प्रलये न व्यथन्ति च"**- अर्थात् सृष्टि के प्रलय के समय भी वह व्यथित नहीं होता। वह सच्चिदानन्द स्वरूप बन जाता है क्योंकि वह मूलतः परमात्मा का ही अंश है।

हमारा यह सच्चिदानन्द स्वरूप मन-पटल पर पड़े सांसारिक प्रभावों के कारण ढ़क गया है। जैसे किसी तालाब में बहुत कीचड़ और लहरें होने के कारण उसके तल में पड़ा बहुमूल्य हीरा दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार हमारे अन्तःकरण में स्थित परमात्मा की ज्योति सांसारिक विषयों के कोलाहल में छिप गई है। **"आगताः"** का अर्थ यह नहीं है कि वह सच्चिदानन्द स्वरूप 'हो जाता है', अपितु वह तो पहले से ही है, केवल उस पर पड़ा आवरण हट जाता है।

एक साहूकार का दृष्टान्त है, जिसने अपना सारा धन भूमि में छिपा दिया और अपने एक विश्वसनीय मित्र को उसका स्थान बता दिया। उसकी आगे की पीढ़ी जब निर्धन और ऋणी हो गई, तो उस मित्र ने आकर केवल उस धन पर से आवरण हटा दिया। धन तो पहले से ही वहाँ था, केवल प्रकट हो गया। जब पौत्रों ने कहा कि आपने हमें मालामाल कर दिया, तो मित्र ने उत्तर दिया, **"मैंने कहाँ मालामाल किया? मैंने तो केवल आवरण हटाया है।"**

उसी प्रकार, इस ज्ञान पर जो अज्ञान का आवरण है, यह आवरण जब हटेगा तब अन्दर से ज्ञान खिलेगा। वह हमारे पास ही है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

"एरवी ज्ञानचि आपण।

परी अज्ञानास्तव झाकोळलेपण।

म्हणोनि भ्रमतसे कीं जाण । जन्ममृत्युमाजी॥

अर्थात्, हम स्वयं ज्ञान स्वरूप ही हैं, किन्तु अज्ञान के कारण यह ढक गया है, जिससे हम जन्म-मृत्यु के चक्र में भटक रहे हैं। यह इसलिए हुआ क्योंकि **"जो आवडू नि घेतले भव स्वर्गादिक"**- अर्थात् हमें यह परिवर्तनशील संसार इतना प्रिय हो गया कि हम इसी में लिपट गए। यह संसार (**"संसरति इति संसारः"**) निरन्तर बदलता रहता है, इसलिए इसमें स्थायी सुख या आनन्द नहीं मिल सकता। इसी में रम जाने के कारण हम अपने मूल ज्ञान-स्वरूप को भूल गए हैं। श्रीभगवान् इसी महत्त्वपूर्ण ज्ञान को प्रकट कर रहे हैं।

14.3

मम योनिर्महद्ब्रह्म, तस्मिन्गर्भं(न्) दधाम्यहम्।
सम्भवः(स्) सर्वभूतानां(न्), ततो भवति भारत॥14.3॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! मेरी मूल प्रकृति तो उत्पत्ति स्थान है (और) मैं उसमें जीवरूप गर्भ का स्थापन करता हूँ। उससे सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन को **"भारत"** कहकर सम्बोधित करते हैं। 'भा' का अर्थ है आभा या ज्ञान और 'रत' का अर्थ है रमण करने वाला। भारत वह भूमि है, जहाँ ज्ञान में रमण करने वाले ऋषियों की अनेक पीढ़ियों ने जन्म लिया। अर्जुन के अन्तरङ्ग में भी ज्ञान की लालसा बढ़ रही है, इसलिए श्रीभगवान् आनन्दित होकर उन्हें इस नाम से पुकारते हैं।

श्रीभगवान् सृष्टि की उत्पत्ति का रहस्य समझाते हुए कहते हैं कि किसी भी नई निर्मिति के लिए दो तत्त्वों का संयोग आवश्यक होता है। जैसे ताली बजाने (आहत नाद) के लिए दो हाथों की, कुम्हार को घड़ा बनाने के लिए ज्ञान के साथ मिट्टी की, और किसी उपकरण को चलाने के लिए यन्त्र के साथ विद्युत या इन्टरनेट जैसी सूक्ष्म शक्ति की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सृष्टि की रचना भी दो के संयोग से हुई है- प्रकृति और पुरुष।

श्रीभगवान् कहते हैं-

"मम योनिर्महद्ब्रह्म"- अर्थात् मेरी जो मूल प्रकृति (माया) है, वह **"महद्ब्रह्म"** रूपी योनि है, जिसमें **"अहम् गर्भं दधामि"**- अर्थात् मैं चैतन्य रूपी बीज का स्थापन करता हूँ। यह जड़ (प्रकृति) और चैतन्य (पुरुष) का संयोग है। यह पुरुष चैतन्य-स्वरूप (कॉन्शियसनेस) है, किन्तु केवल चैतन्य से कार्य नहीं होता। उसके साथ वृत्ति रूपी शक्ति का उदय होना आवश्यक है, जो मूल प्रकृति या जगदम्बा है। यह शिव और शक्ति का संयोग है। इसीलिए भारतीय परम्परा में शिव और शक्ति को अर्द्धनारीश्वर के रूप में एक ही शरीर में दिखाया जाता है, जो उनकी अभिन्नता का प्रतीक है।

यही शिव-शक्ति मिलकर सृष्टि की रचना, पालन और संहार का कार्य करते हैं, जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में जाना जाता है। इसी संयोग से **"ततः सर्वभूतानां सम्भवः भवति"**- अर्थात् समस्त भूतों की उत्पत्ति होती है। यहाँ **'भूत'** शब्द का अर्थ है- पञ्च महाभूतों (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश) से बने प्राणी। इसका एक अर्थ **'भवति इति भूतः'** अर्थात् 'जो उत्पन्न होता है', वह भी है। विज्ञान में आइंस्टीन का सिद्धान्त, $E=mc^2$, भी ऊर्जा (एनर्जी) और पदार्थ (मैटर) के इसी सम्बन्ध को दर्शाता है। श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं कि यह संयोग उन्होंने ही किया है। इसी दिव्य संयोग के कारण चौरासी लाख योनियों का निर्माण होता है।

14.4

सर्वयोनिषु कौन्तेय, मूर्तयः(स्) सम्भवन्ति याः।
तासां(म्) ब्रह्म महद्योनिः(र्), अहं(म्) बीजप्रदः(फ्) पिता॥14.4॥

हे कुन्तीनन्दन ! सम्पूर्ण योनियों में प्राणियों के जितने शरीर पैदा होते हैं, उन सबकी मूल प्रकृति तो माता है और मैं बीज-स्थापन करने वाला पिता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन को "कौन्तेय" कहकर सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "**सर्वयोनिषु याः मूर्तयः संभवन्ति"-** अर्थात् चौरासी लाख योनियों में जितने भी शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, **"तासां महद्ब्रह्म योनिः"**- उन सबकी गर्भधारण करने वाली माता मेरी महद्ब्रह्म-स्वरूपा प्रकृति है और **"अहं बीजप्रदः पिता"-** मैं ही बीज स्थापित करने वाला पिता हूँ।

सृष्टि में अनन्त विविधता है। जिस प्रकार एक मछलीघर (एक्वेरियम) में अनगिनत प्रकार की मछलियाँ होती हैं या आकाश में असंख्य प्रकार के पक्षी होते हैं, उसी प्रकार यह सृष्टि अनन्त रूपों से भरी हुई है। इस विविधता का अध्ययन करने में ही सम्पूर्ण जीवन व्यतीत हो सकता है। यह सृष्टि का ज्ञान, जिसे विज्ञान कहते हैं, हमें विश्लेषण के द्वारा पृथक्करण की ओर ले जाता है। प्राणीशास्त्र (जूलॉजी) या वनस्पतिशास्त्र (बॉटनी) में जीवों और वनस्पतियों को उनके कुलों (फैमिलीज) में वर्गीकृत किया जाता है। इसके विपरीत, आत्मज्ञान हमें इस अनेकता में एकता को खोजना सिखाता है।

"हर देश में तू, हर भेष में तू, तेरे नाम अनेक तू एक ही है।"

यह विविधता आनन्द देने के लिए है। श्रीभगवान् ने इतने रस, रङ्ग, पेड़-पौधे, पक्षी और पशु हमें आनन्द देने के लिए ही बनाए हैं। उनकी सृष्टि किसी को दुःख देने के लिए नहीं है। दुःख तो मानव-निर्मित सीमाओं और विभाजनों से उत्पन्न होता है, जिसके कारण

आज तक युद्ध हो रहे हैं।

प्रकृति के तीन गुण

श्रीभगवान् आगे बताते हैं कि इस सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य तीन गुणों- सत्त्व, रज और तम- के कारण चलता है।

सत्त्वगुण- सात्त्विकता, ज्ञान का प्रकाश, ज्ञान स्वरूप।

रजोगुण- चञ्चलता, क्रियाशीलता।

तमोगुण- क्रियाशून्यता, जड़त्व (इनर्शिया)।

यह तीनों गुण सृष्टि के सञ्चालन के लिए आवश्यक हैं। एक कार के उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। स्टीयरिंग सत्त्वगुण है, जो सही दिशा देता है। पेट्रोल रजोगुण है, जो गाड़ी को गति देता है। ब्रेक तमोगुण है, जो गाड़ी को रोकता है। इसी प्रकार, एक वृक्ष का स्वरूप और दिशा सत्त्वगुण से, उसका बढ़ना रजोगुण से और एक सीमा पर आकर वृद्धि का थमना तमोगुण से नियन्त्रित होता है।

दिन भर सत्त्वगुण के प्रभाव से ज्ञान अर्जित करने और रजोगुण के प्रभाव से कर्म करने के पश्चात् रात्रि में विश्राम के लिए तमोगुण आवश्यक है। तमोगुण के कारण ही हमें विश्रान्ति मिलती है, जिससे हम दूसरे दिन पुनः स्फूर्ति के साथ कार्य कर पाते हैं। इसलिए, यह तीनों गुण आवश्यक बन्धन हैं। जब तक हम इन बन्धनों को नहीं समझेंगे, तब तक हम जीवन में इनका सही उपयोग करके अपना उन्नयन नहीं कर सकते।

14.5

सत्त्वं(म्) रजस्तम इति, गुणाः(फ्) प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो, देहे देहिनमव्ययम्॥14.5॥

हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न होने वाले सत्त्व, रज (और) तम – ये (तीनों) गुण अविनाशी देही (जीवात्मा) को देह में बाँध देते हैं।

विवेचन - हे महाबाहो! श्रीभगवान् ने अर्जुन को अनेक स्थानों पर अलग-अलग सम्बोधन दिए हैं। वे उसे कभी 'गुडाकेश' (निद्रा पर विजय प्राप्त करने वाला) कहते हैं, परन्तु यहाँ यह बताते हुए कि अब वह तमोगुण में है, वे उसे **'महाबाहो'** कहते हुए याद दिलाते हैं कि वह इस सच्चे ज्ञान के कारण नहीं, अपितु तमोगुण के कारण अवसादग्रस्त हो गया है। श्रीभगवान् अर्जुन के मन से इस तमोगुण का आवरण दूर कर रहे हैं, जो शोक, जड़त्व और अज्ञान की ओर ले जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि सत्त्व के बिना ज्ञान नहीं, रज के बिना क्रिया नहीं और तम के बिना क्रिया रुकती नहीं है। निम्न तीनों गुण प्रकृति से निर्मित होते हैं -

"सत्त्वं, रजः, तम इति प्रकृति सम्भवा गुणाः",

"अव्ययं देहिनं देहे निबध्नन्ति"

(अव्यय देही को देह में बाँधते हैं)।

जो अव्यय, अविनाशी, व्यापक, असीमित, और अनन्त है (शुद्ध चैतन्य, जो स्वाद, गन्ध और रूप रहित है), उसे इस देह में बाँध देते हैं, जिससे व्यापकता सङ्कुचितता में बन्धित हो जाती है। देह की पहचान बचपन में ही मिलती है जब माँ एक नाम देती है (जैसे वन्दना), जिससे समाज और संसार देह की मूर्ति के कारण व्यक्ति को जानता है। फिर संसार देह के कारण ही निर्णयात्मक होकर गुणधर्म आरोपित करता है, जैसे काला, गोरा, नाटा, ऊँचा आदि। परन्तु वह अव्यय तत्त्व इन गुणों से परे हैं। यह चैतन्य तत्त्व इस देह में बँध गया और बँधने के बाद स्वयं को देह ही मानने लगा, उन गुणों से ही पहचानने लगा। इन गुणों का वास्तविक मिश्रण क्रमचय-संचय

(परम्यूटेशन-कॉम्बिनेशन) प्रत्येक का अलग है और इसी के कारण सृष्टि की विविधता में यह व्यापकत्व बँध गया। हमने देह की गाड़ी (तीन गुणों की मनुष्य योनि) को अपना स्वरूप मान लिया, जबकि यह तो गन्तव्य तक जाने का साधन है। हम अपने मूल स्वरूप को भूल गए।

"आपला आपणपेयां, विसरु जो धनंजया,

तेंचि रूप यया, अज्ञानासी ॥ ७१ ॥"

श्रीभगवान् कहते हैं-

"म्हणून माझी आलिङ्गना।
जोगा तोचि अर्जुना।
गगन जैसें आलिङ्गना।
गगनाचिया॥"

(ज्ञानेश्वरी, 13.1093)

अर्थात् उस अव्यय परमात्मा को कौन आलिङ्गन में बाँध सकेगा? जो इस अव्ययता को अपने अन्दर से पहचानेगा, वह उस अव्यय परमात्मा के साथ एकाकार हो सकता है। श्रीभगवान् यहाँ कहते हैं कि वह इस प्रकार से देह में बँध गया और देह की पहचान मानने के कारण हम अनेक बार द्वन्द्व में श्रेष्ठता/ हीनता मनोग्रन्थि (सुपीरियरिटी कॉम्प्लेक्स, इनफीरियरिटी कॉम्प्लेक्स) बँध जाते हैं। हम स्वयं को नीचा अथवा कुछ लोगों से ऊपर समझते हैं। हम स्वयं को एक जटिल व्यक्तित्व में ढाल लेते हैं और अपने मूल स्वरूप को भूल जाते हैं। श्रीभगवान् वही हमें याद दिलाना चाहते हैं कि किस प्रकार सदाशिव पाशबद्ध होकर जीव बन जाता है। आगम का वाक्य है:

"पाशबद्धः सदा जीवः, पाशमुक्तः सदाशिवः"।

जो पाशबद्ध हो जाता है, वह जीव हो गया और जब वह पाश से मुक्त होता है, वह सदाशिव हो गया। तो श्रीभगवान् यहाँ पर कहते हैं, अब ये तीनों गुण कैसे बान्धते हैं, वह भी समझ लो, अर्जुन। श्रीभगवान् कहते हैं:

14.6

तत्र सत्त्वं(न्) निर्मलत्वात्, प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बध्नाति, ज्ञानसङ्गेन चानघ॥14.6॥

हे पाप रहित अर्जुन! उन गुणों में सत्त्वगुण निर्मल (स्वच्छ) होने के कारण प्रकाशक (और) निर्विकार है। (वह) सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से (देही को) बाँधता है।

विवेचन- तीनों गुण, चाहे वे सत्त्व, रज अथवा तम हों, वास्तव में तीन श्रृङ्खलाएँ या रस्सियाँ हैं जो बाँधती हैं। ठाकुर रामकृष्ण देव कहते हैं कि चाहे श्रृङ्खला सोने की हो, चाँदी की हो या लोहे की हो, वह बाँधेंगी अवश्य। यदि तमोगुण लोहे की श्रृङ्खला है, रजोगुण चाँदी की श्रृङ्खला है और सत्त्वगुण सोने की श्रृङ्खला है, तो भी वे बाँधेंगी। श्रीभगवान् पहले सत्त्वगुण का वर्णन करते हैं, उसके परिणामों, मुख्य प्रभावों और दुष्प्रभाव को समझने के लिए। सत्त्वगुण का मुख्य परिणाम ज्ञान का प्रकाश है, यह ज्ञान की ओर ले जाता है, जैसे कार का स्टीयरिंग सही दिशा में ले जाता है। यह ज्ञान प्रत्येक जीव में, सृष्टि के डीएनए में विद्यमान है; एक छोटी चींटी भी अपना भोजन (शर्करा) का दाना ढूँढ़ती है, यह प्रक्रिया ज्ञान के प्रकाश के कारण है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण सभी सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं। रदरफोर्ड के परमाणु मॉडल में एक नाभिक होता है, इस नाभिक में प्रोटॉन (सत्त्वगुण) और न्यूट्रॉन (तमोगुण) होते हैं, तथा इलेक्ट्रॉन (रजोगुण) कक्षकों में घूमते हैं। इस प्रकार सृष्टि के कण-कण में ये तीनों गुण व्याप्त हैं।

श्रीभगवान् सत्त्वगुण का लक्षण बताते हुए कहते हैं, “हे अनघ (निष्पाप) अर्जुन! तुम में सत्त्वगुण की मात्रा बहुत अधिक है। तुम नियमों का पालन करते हो, बड़ों की आज्ञा मानते हो, सभी के प्रिय हो, यहाँ तक कि मुझे भी अपने प्रेम के बन्धन में बाँधते हो। तुम पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और माता कुन्ती के प्रिय हो। तुम निष्पाप हो। परन्तु फिर भी बन्धन को समझना होगा। जब तक बन्धन को जानेंगे नहीं, तब तक सत्त्वगुण का बन्धन भी नहीं खुलेगा।”

श्रीभगवान् कहते हैं, हे अनघ! सत्त्वगुण **"निर्मलत्वात्"** (निर्मल, मल रहित) है, **"प्रकाशकम्"** (प्रकाश देता है, अन्तरङ्ग को स्वच्छ और शुद्ध करता है), और **"अनामयम्"** (रोग रहित, अन्तरङ्ग के रोग दूर करता है)। परन्तु इसका एक दुष्प्रभाव है: यह **"सुखसङ्गेन बध्नाति"** (सुख से बाँधता है)। जब श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन किया जाता है, उसे कण्ठस्थ किया जाता है, हृदयङ्गम करने का प्रयास किया जाता है, पाठक परीक्षाएँ दी जाती हैं, और गीतावृत्ति हो जाते हैं, तब स्वयं को दूसरों से अलग समझने लगते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं,

"या जाणिवेनि माजे।

तो अहंकारे ठाके।"

अर्थात्, ज्ञान से जो मतवाला हो जाता है, वह अहङ्कार से रुक जाता है। सत्त्वगुण हमें ज्ञान की ओर ले जाता है, अन्तरङ्ग में ज्ञान का प्रकाश प्रकाशित हो जाता है, परन्तु ज्ञान के कारण स्वयं को अलग मानने लगते हैं, विभक्त हो जाते हैं, और कभी-कभी सबको गले नहीं लगा पाते। ज्ञान का अहङ्कार भी हो जाता है, जिसके प्रति महात्माजन बहुत सावधान करते हैं। सत्त्वगुण प्रकाशक और अनामय है, परन्तु यह सुख से बान्धता है। ज्ञान की आराधना में मन इतना रम जाता है कि कर्म की इच्छा नहीं रहती। यदि घर की बेल बजी और कोई अतिथि आ गए, तो रसोई बनाने की इच्छा नहीं होती, बल्कि पढ़ने में ही रमने की इच्छा होती है।

"सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ"।

हे अनघ! यह ज्ञान से बाँधता है। यदि तुम इस ज्ञान में उतरोगे, तो युद्धभूमि का कर्म नहीं चाहोगे। श्रीभगवान् कहते हैं, यह भी एक बन्धन ही है, क्योंकि सृष्टि में रहने के लिए कर्म तो करना ही होगा। यह ज्ञान भी हमें बाँधता है। यदि स्वयं को गुण मानने लगें, तो सत्त्वगुण में भी फँस जाते हैं। जब तक इस बन्धन को जानेंगे नहीं, तब तक मन में अभेद दृष्टि नहीं आएगी, और भेद रहित, अभिन्न श्रीभगवान् का ज्ञान भी नहीं उतरेगा।

स्वामी विवेकानन्द जी का एक प्रसङ्ग है-

जब वे अमेरिका गए और शिकागो में ऐतिहासिक भाषण के बाद प्रसिद्ध हुए, तो अनेक लोग उनसे ज्ञान पाने के लिए प्रवचन आयोजित करने लगे। एक स्थान पर श्रीमद्भगवद्गीता पर उनका प्रवचन आयोजित किया गया। वहाँ पहुँचने पर, द्वारपाल ने स्वामी जी के साँवले रङ्ग को देखकर उन्हें नीग्रो समझा (उस समय अमेरिका में वंशभेद था) और अन्दर जाने नहीं दिया। स्वामी जी वापस लौट गए। बाद में, आयोजकों ने उनसे प्रश्न किया कि वे उस दिन क्यों नहीं आए। स्वामी जी ने बताया कि द्वारपाल ने उन्हें नीग्रो समझकर अन्दर नहीं जाने दिया। आयोजकों ने कहा, "आपने बता देना था न कि मैं नीग्रो नहीं हूँ।" स्वामी जी ने कहा, "मैं नीग्रो नहीं हूँ, मैं कोई उससे ऊपर के स्तर का हूँ, यह बताना अर्थात् किसी को नीचा दिखाकर स्वयं को ऊपर सिद्ध करना होगा। मैं किसी को नीचा दिखाकर जीवन में ऊपर उठना नहीं चाहता।" यह अभेद ज्ञान है। श्रीभगवान् कहते हैं, परन्तु यह सत्त्व का ज्ञान कभी-कभी हमें सृष्टि से दूर करता है, और यह ज्ञान की श्रृङ्खला भी हमें बाँधती है।

14.7

रजो रागात्मकं(म्) विद्धि, तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय, कर्मसङ्गेन देहिनम्॥14.7॥

हे कुन्तीनन्दन! तृष्णा और आसक्ति को पैदा करने वाले रजोगुण को (तुम) रागस्वरूप समझो। वह कर्मों की आसक्ति से देही जीवात्मा को बाँधता है।

विवेचन- रजोगुण की दूसरी श्रृङ्खला चाँदी के समान है। यह कार्यशील बनाती है और जीवन की आपाधापी में कार्यशीलता के

कारण फल तथा सम्पन्नता भी प्राप्त होती है, जो उचित भी है। परन्तु यह रजोगुण हमें रञ्जन में डालता है, मनोरञ्जन चाहिए होता है। सत्त्वगुण के कारण श्रीमद्भगवद्गीता सुनी, पढ़ी अथवा विवेचन सुना जा सकता है। परन्तु जिसमें रजोगुण अधिक होता है, वह कहेगा कि इसमें मनोरञ्जन नहीं है। वह कहीं दूरदर्शन कार्यक्रम देखेगा अथवा सङ्गीत सुनेगा, क्योंकि उसे मनोरञ्जन चाहिए। श्रीभगवान् कहते हैं कि यह रागात्मक है। सातवें अध्याय में श्रीभगवान् इसके विश्लेषण करते हुए इसके लक्षण बताते हैं।

हे कौन्तेय! **"रजो रागात्मकं विद्धि"**। रजोगुण रागात्मक अर्थात् रञ्जनात्मक है। 'राग' का अर्थ आसक्ति भी है। इसके कारण अन्तरङ्ग में अत्यधिक आसक्ति और किसी वस्तु के लिए लालसा निर्मित होती है। श्रीभगवान् इसे **"तृष्णासङ्गसमुद्भवम्"** कहते हैं, अर्थात् कभी न बुझने वाली प्यास से उत्पन्न होने वाला। जब कोई इच्छा या कामना पूरी भी हो जाती है, तो रजोगुण के कारण नई इच्छाएँ और कामनाएँ निर्मित होती हैं। यह तृष्णा कभी बुझती नहीं; एक इच्छा पूरी होने पर वह उतनी मायने नहीं रखती, नई इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं और रजोगुण मनुष्य को उनके पीछे दौड़ाता है।

रजोगुण **"तत् देहिनम् कर्मसङ्गेन निबध्नन्ति"** (देहधारी को कर्म की आसक्ति से बाँधता है)। यह कर्म के पीछे दौड़ाता है – एक उद्योग के बाद दूसरा उद्योग, एक पद प्राप्त होने पर दूसरा पद प्राप्त करने की लालसा, एक पुरस्कार मिलने पर और पुरस्कारों की इच्छा। जीवन में यह दौड़ कभी समाप्त नहीं होती, यह रजोगुण के कारण है। गुरुदेव ने तीन कर्म बताए हैं: 'जानाति', 'इच्छति', और 'यतति'। 'जानाति' अर्थात किसी बात की जानकारी मिलना। 'इच्छति' अर्थात् उसकी इच्छा उत्पन्न होना (जैसे साड़ियों, आभूषण आदि की प्रदर्शनी में वस्तुएँ देखकर)। 'यतति' अर्थात उसके लिए प्रयत्नरत होना। मनुष्य का सारा जीवन इसी प्रयत्न में चला जाता है। रजोगुण कर्म सङ्ग से बान्धता है। 'मैं यही कर्म करूँगा', यह कर्मासक्ति है। कर्म करने के बाद फल चाहिए, यह भोक्तृत्व है। 'मैंने कर्म किया', इसका अहङ्कार, यह कर्तृत्व है। कर्म के ये तीन बन्धन हैं: कर्तृत्व, भोक्तृत्व, और कर्मासक्ति। जैसे सेवानिवृत्ति के बाद यह समझ आता है कि कैसे उस कर्म से बँध गए थे, कैसे उस कुर्सी की आसक्ति निर्मित हो गई थी। यह कर्म सङ्ग रजोगुण के कारण होता है।

ये तीनों गुण सभी में होते हैं, उनके मिश्रण (क्रमचय-संचय), प्रतिशत और मात्रा अलग-अलग होती है, परन्तु तीनों गुण हमें बाँधते हैं।

14.8

तमस्त्वज्ञानजं(म्) विद्धि, मोहनं(म्) सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभि:(स्), तन्निबध्नाति भारत॥14.8॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! सम्पूर्ण देहधारियों को मोहित करने वाले तमोगुण को तुम अज्ञान से उत्पन्न होने वाला समझो। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा देहधारियों को बाँधता है

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, हे भारत! यह सभी जीवों को देह में रहकर मोहित करने वाला, मोह में डालने वाला, भ्रमित करने वाला तथा अज्ञान के आवरण में डालने वाला है।
"तमस्तु अज्ञानजं विद्धि"- अर्थात् यह तमोगुण अज्ञान के कारण निर्मित होता है। तमोगुण आवश्यक भी है, जैसे विश्रान्ति के लिए रुकना आवश्यक है। यहाँ तक कि दाँत की वृद्धि का रुकना भी तमोगुण के कारण होता है, अन्यथा वह बढ़ता ही जाएगा।
रजोगुण कर्म में प्रवृत्त करता है, बड़ी प्यास जगाता है और हर क्षण रञ्जन चाहता है।

तमोगुण के दुष्प्रभाव क्या हैं?

"प्रमादालस्यनिद्राभिः"- प्रमाद अर्थात् गलतियों, आलस्य और निद्रा से बाँधता है। बिस्तर, चल चलभाष (मोबाइल), कुर्सी अत्यन्त प्रिय लगने लगते हैं। दिन भर दूरदर्शन देखना, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, या फेसबुक देखना, जिससे कुछ भी निर्मित नहीं होता, किसी का कल्याण नहीं होता, वह अज्ञान के आवरण में डाल देता है।

यह **"प्रमादालस्यनिद्राभिः तत् देहिनम् बध्नाति"**- देहधारी को आलस्य, गलतियों और अज्ञान में डालता है, उसी अव्यय देही (चैतन्यमय जीवात्मा) को। गुरुदेव ने अज्ञान का अर्थ दो बातों में समझाया है: एक 'आवरण' (ज्ञान को ढक देना) और दूसरा 'विक्षेप' (गलत बातों को सही समझना)। इन दोनों से तमोगुण बान्धता है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि निद्रा इतनी प्रिय हो जाती है कि-

मार्गीं जातां घसरला। तरी तेथेंचि लागे डोळा।

झोपें अमृतालागीं। नाकारितो॥ १८८ ॥

अर्थात्, मार्ग में जाते-जाते गिर जाने पर भी वहीं सो जाता है।
लोग मार्ग में मदिरा पीकर सोए रहते हैं। निद्रा इतनी प्रिय हो जाती है कि अमृत भी नकार दिया जाता है। इस प्रकार, यह तमोगुण अज्ञान के आवरण और विक्षेप में डाल देता है, अर्जुन।

14.9

सत्त्वं(म्) सुखे सञ्जयति, रजः(ख्) कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः(फ्), प्रमादे सञ्जयत्युत॥14.9॥

हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! सत्त्वगुण सुख में (और) रजोगुण कर्म में लगाकर (मनुष्य पर) विजय करता है। परन्तु तमोगुण ज्ञान को ढककर एवं प्रमाद में लगाकर (मनुष्य पर) विजय करता है।

विवेचन -

तीनों गुणों के बन्धन का सारांश

"सत्त्वं सुखे सञ्जयति" (सत्त्वगुण सुख में आसक्त करता है)। ज्ञान की लालसा को सुख समझना मनुष्य को बाँधता है, जैसे परिवार के सुख में खो जाना। यह सुख में बाँधता है और उससे आगे नहीं जाने देता।

"रजः कर्मणि भारत" (हे भारत! रजोगुण कर्म में बाँधता है) और **"ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत"** (तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में आसक्त करता है)। 'ज्ञानं आवृत्य' अर्थात् ज्ञान को ढककर, 'प्रमादे' अर्थात गलतियों में तमोगुण आसक्त करता है।

जब इन तीनों बन्धनों को समझा जाएगा, तभी अपने अन्तरङ्ग के मिश्रण भी बदले जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, कौरव और पाण्डव एक ही पाठशाला में पढ़े, परन्तु उनके अन्तरङ्ग भिन्न थे, क्योंकि गुणों का मिश्रण अलग था। दुर्योधन कहता है,

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।

जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥

केनापि देवेन हृदि स्थितेन।

यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि॥

अर्थात्, **'मुझे धर्म ज्ञात है, परन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। मुझे अधर्म ज्ञात है, परन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती। हृदय में स्थित किसी देव (शक्ति) द्वारा नियुक्त होकर मैं वैसा ही करता हूँ।'**

उसके अन्दर के रजोगुण और तमोगुण उसे नियुक्त कर रहे थे; रजोगुण तमोगुण के अधीन था, जिसके कारण कार्यशीलता भी गलत बातों तक ले जाती है। रजोगुण आवश्यक है।

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि यह देश सत्त्वगुण का नाम लेते-लेते तमोगुण में डूब गया। घर-बार छोड़कर साधु बनने और भिक्षा माँगने में जीवन का क्या अर्थ है? उससे अच्छा तो रजोगुण है, जो कार्यशीलता, विकसितता, देश का विकास, अर्थ और समृद्धि देता है।

रजोगुण के कारण संसार में यश भी मिलता है। परन्तु यह यश तब तक नैतिकता के मार्ग पर नहीं होगा जब तक अन्तरङ्ग में सत्त्वगुण नहीं होगा। तमोगुण के कारण अनैतिक मार्ग से भी यश प्राप्त करने की इच्छा होती है। इसीलिए राम और उनके गुरु वशिष्ठ, चन्द्रगुप्त और चाणक्य जैसी जोड़ियाँ बेहतर कार्य करती हैं। जब रजोगुण सत्त्वगुण के अधीन होता है, तो कार्य अच्छा होता है। और जब रजोगुण तमोगुण के अधीन होता है, तो कार्य गलत होता है, जैसे आतंकवादियों द्वारा लोगों को मारना, अपराधी कार्य करना, दूसरों का छीनना। यहाँ रजोगुण कार्य कर रहा है, परन्तु तमोगुण के अधीन है।

इस अध्याय के कारण हम यह समझते हैं और जब सृष्टि को समझते हैं, तो अपने अन्तरङ्ग के प्रतिबिम्ब को भी समझते हैं। जब तक जीव, जगत् और जगदीश्वर के बीच के 'जगत्' को नहीं समझेंगे, तब तक जीव का उस जगदीश्वर के साथ मिलाप या संयोग नहीं होगा। राही मासूम रजा कहते हैं-

"पत्ता भी गर हिलता है उसकी रज़ा से।
बन्दा जो गुनहगार है पता नहीं क्यों।"

अपराधी कार्य क्यों है? क्योंकि उसमें तमोगुण और रजोगुण मिल गए हैं। इस अध्याय के कारण इसे समझा जा सकता है।

अगले विवेचन सत्र में, इन दुष्प्रभावों से कैसे बचें, गुणातीत कैसे हों तथा साधकों के लिए साधन और सिद्धों के लक्षण क्या हैं, श्रीभगवान् इस अध्याय में बताएँगे। यह विवेचन गुरुदेव के कृपा आशीर्वाद से, उनकी ही मन्त्रमयी वाणी से कुछ कणों को बटोरकर साझा किया गया है, यह भी उन्हीं की कृपा है। उनके चरणों में इसे अर्पण करते हुए वाणी को विराम दिया जाता है। ज्ञानेश्वर महाराज की जय। सद्गुरुदेव श्रीभगवान् की जय।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- अनुपमा दीदी
प्रश्न- इस संसार के मायाजाल और मोह से हमें किस प्रकार बचना चाहिए?
उत्तर- भगवान् ऐसा नहीं कह रहे हैं कि इस संसार का उपभोग मत कीजिए किन्तु हमें उसके बन्धन में नहीं पड़ना है क्योंकि उसे हमें एक न एक दिन छोड़ना ही है। जब हमें तीनों गुण प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में पता चल गया है तो हमें स्वयं की और दूसरों की इन गुण प्रवृत्तियों को जानना चाहिए और हमें जैसे हम स्वयं हैं वैसा ही दूसरा हो इसका आग्रह नहीं रखना चाहिए। यदि हमें निरन्तर कार्य में लगे रहना अच्छा लगता है तो हम में रजो गुण प्रभावी है और यदि किसी व्यक्ति को भक्ति में रमे रहना अच्छा लगता है तो उसमें सत्त्व गुण प्रभावी है। हमें दूसरे को स्वयं के अनुसार और स्वयं को दूसरे के अनुसार करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम सृष्टि का आनन्द ले पाएँगे।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||